उपभोक्तावादए आर्थिक विकास एक सामाजिक समस्या

डॉ. बलवीर सिंह अभय
व्याख्याता समाजशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय गुढा (झुन्झुनू)

सारांश

उपभोक्ता मनुष्य की एक प्राथमिक आवष्यकता रही है। जो मनुष्य अपने जीवन–यापन के लिए कुछ वस्तुओं का उपभोग करता है, उसी को उपभोक्ता कहा जाता है। आरम्भ से ही सभी तरह के समाजों में व्यक्ति की अनिवार्य आवष्यकता है, वही उपभोक्तावाद आर्थिक विकास से उत्पन्न होने वाली एक सामाजिक समस्या है जो वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक–आर्थिक जीवन में नये तनावों को जन्म दे रही है। समाजषास्त्र और अर्थषास्त्र में उपभोग और उपभोक्ता का अर्थ एक–दूसरे से भिन्न है। आर्थिक संदर्भ में उपभोग का तात्पर्य उस आर्थिक क्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति कुछ वस्तुओं या धन के बदले में जीवन–निर्वाह की वस्तुएँ प्राप्त करके उन्हें उपयोग में लाता है। इस तरह की आर्थिक क्रिया करने वाले व्यक्ति को ही उपभोक्ता कहा जाता है। समाजषास्त्रीय अर्थ पदार्थों का तात्पर्य सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक विषेषताओं के अनुसार कुछ विषेष वस्तुओं अथवा पदार्थों का उपयोग करने की प्रवृति से है। इसका तात्पर्य है कि जैसे–जैसे एक विषेष समाज की संस्कृति और सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होता है, उपभोग की प्रकृति में भी परिवर्तन होने लगता है। सभ्यता के आरम्भिक स्तर पर लोग जंगली पषुओं को मारकर और उनके कच्चे मांस को खाकर उपभोग की आवष्यकता को पूरा कर लेते थे। इसके लिए किसी वस्तु या धन का भुगतान करने की आवष्यकता नहीं थी। कृषि युग की आरम्भिक अवस्था में भी उपभोग और उपभोक्ता का सम्बन्ध किसी तरह की बाजार व्यवस्था से नहीं था। व्यक्ति अपने गाँव या कबीले में ही अपनी आवष्यकता की वस्तुओं की अदला–बदली करके उपभोग की जरूरतों को पूरा कर लेते थे। कृषि अर्थव्यवस्था के बाद औद्योगिक अर्थव्यवस्था आरम्भ हुई तो बड़ी मात्रा का उत्पादन बढ़ने के साथ वस्तुओं की ब्रिकी के लिए संगठित बाजारों की स्थापना होने लगी। इस समय प्रतियोगिता आर्थिक क्रियाओं का मुख्य आधार बन गयी। आर्थिक प्रतियोगिता में सफल होने के लिए उत्पादकों द्वारा बहुत–सी ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा जो लोगों के दैनिक जीवन की कठिनाईयों को कम करके उनकी उपभोग सम्बन्धी मनोवृत्तियों को बदलने लगी। इन बदलती हुई मनोवृत्तियों के फलस्वरूप समाज के एक बड़े वर्ग ने उन वस्तुओं का उपभोग करना आरम्भ कर दिया जिनके लिए उसके पास साधनों की कमी थी। स्पष्ट है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप समाज में एक ऐसी समस्या उत्पन्न हो गयी जिसके अन्तर्गत व्यक्ति में उन वस्तुओं के उपभोग की इच्छा और प्रवृति बढ़ने लगी जिसकी संतुष्टि करना उपलब्ध साधनों के बाहर था। सामान्य शब्दों में इसी दषा को हम उपभोगक्तावाद कहते हैं।

मुख्य शब्द – उपभोक्ताए बाजारवादए राष्ट्रीय संस्कृतिए सृजनशीलताए सांस्कृतिक राष्ट्रए आर्थिक प्रतियोगिताए भौतिक संस्कृति

उद्देश्य

1. मनुष्य प्राथमिक रूप से एक उपभोक्ता है तथा वह किस प्रकार जीविका उपार्जन के लिए वस्तुओं का उपभोग करता है का अध्ययन करना है।
2. उपभोगक्तावाद एक व्यक्तिवादी अवधारणा है। यह व्यक्ति को अधिक से अधिक धन प्राप्त करके इसका उपयोग वैयक्तिक सुख–सुविधाओं के लिए किस प्रकार किया जाता है को मालुम करना है।
3. उपभोगक्तावाद किस प्रकार से सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति का निर्धारण करती है का अध्ययन करना है।
4. उपभोगक्तावाद संस्कृति में व्यावसायिक नैतिकता के स्थान पर आकर्षक वस्तुओं के उपभोग को अधिक महत्त्व दिया जाता है का अध्ययन करना है।
5. उपभोक्तावाद का आधार आकर्षक विज्ञापनों की वह प्रणाली है जो व्यक्ति के मस्तिष्क को बन्द करके उसमें प्रत्येक ऐसी वस्तु के उपभोग का मोह पैदा कर देती है जिसका वास्तविकता से अधिक सम्बन्ध नहीं होता है को मालुम करना है।

प्रस्तावना

उपभोक्तावाद को अर्थषास्त्र एवं समाजषास्त्र के आधार पर अलग–अलग परिभाषित किया जाता है। आर्थिक सिद्धान्तों में उपभोक्तावाद को उत्पादन का आधार, बाजार का राजा आर्थिक क्रियाओं का नियंत्रक आदि शब्दों द्वारा सम्बोधित किया जाता रहा है। आर्थिक सिद्धान्त इस मान्यता पर बल देता है कि आवष्यकता ही आविष्कार की जननी है। दूसरे शब्दों में जैसे–जैसे आवष्यकताएँ बदलने के साथ लोगों के उपभोग के तरीके बदलने है, विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में भी नये–नये परिवर्तन होने लगते है। समाजषास्त्रीय दृष्टिकोण आर्थिक सिद्धान्तों से भिन्न है। इसके अनुसार आर्थिक व्यवस्था तथा बाजार व्यवस्था वृहत सामाजिक संरचना की ही एक उप–संरचना (नइे.जतनबजनतम) है। इसका तात्पर्य है कि संस्कृति, सामाजिक मूल्यों, व्यवहार के नियमों और सामाजिक मानदण्डों पर आधारित जब किसी समाज की वृहत सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने लगता है तो विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का रूप भी बदलने लगता है। वर्तमान समाजों में उपभोग की प्रकृति में होने वाला परिवर्तन भी किसी न किसी रूप में सामाजिक संरचना से सम्बन्धित आर्थिक पक्ष और मनोवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन का ही परिणाम है। उपभोक्तावाद इसी परिवर्तन का एक विशेष रूप है।

उपभोक्तावाद क्या है ? इसे स्पष्ट करते हुए कुछ लेखक ऐसा मानते हैं कि उपभोक्तावाद एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसके अनुसार आर्थिक जीवन का संचालन उपभोक्ताओं के लाभ के लिए किया जाता है। यह एक आर्थिक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार उपभोक्तावाद को एक समस्या नहीं कहा जा सकता। एक समस्या के रूप में उपभोक्तावाद वस्तुओं का उपभोग करने की एक विशेष प्रवृत्ति है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा अधिक से अधिक श्रम करने का उद्देश्य उन वस्तुओं का अधिक से अधिक उपयोग करने की इच्छा है जिनका सम्बन्ध सुख

और सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़ा जाने लगता है। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो व्यक्तियों को अपने साधनों से बाहर जाकर भी अधिक से अधिक उपभोग करने की प्रेरणा देती है। किसी समाज में व्यक्ति जब अपने साधनों के अन्दर रहते हुए आराम, विलास और मनोरंजन से सम्बन्धित वस्तुओं का उपभोग करते हैं तो इससे उनके जीवन में किसी तरह के आर्थिक या मानसिक तनाव पैदा नहीं होते। दूसरी ओर मध्यम या निम्न वर्ग के लोग जब अपने से उच्च वर्ग द्वारा उपभोग में लायी जाने वाली वस्तुओं को देखते हैं तो उनकी यह धारणा बनने लगती है कि इन वस्तुओं का उपभोग किये बिना अपने वर्ग में वे अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकते।

उपभोक्तावाद की प्रकृति ¼Nature of Consumerism½

उपभोक्तावाद की प्रकृति और समस्या को समझने के लिए परम्परागत और वर्तमान सामाजिक संरचना को समझना आवश्यक है। भारतीय समाज की परम्परागत संरचना उन मूल्यों पर आधारित थी जो कम से कम आवष्यकतओं के द्वारा जीवन–निर्वाह, सादगी और संयुक्तता को महत्व देते थे। यहाँ कृषि अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक विषेषताओं तथा आय के सीमित साधनों को देखते हुए संयुक्त परिवार व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया गया। एक ही घर में अनेक पीढियों के लोगों द्वारा साथ–साथ रहने तथा परिवार के सभी सदस्यों के व्यवहारों पर कर्ता का नियंत्रण होने के कारण लोगों की आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। बाजारों का रूप भी सामान्य था जिनमें जीवन सामान्य आवश्यकताओं से सम्बन्धित परम्परागत और सस्ती वस्तुएँ ही उपलब्ध होती थीं। वर्तमान सामाजिक संरचना उन मूल्यों पर आधारित है जो व्यक्तिवादिता, वैयक्तिक स्वतन्त्रता, भौतिक सुखों और प्रदर्षनवाद को अधिक महत्व देते हैं। इसके फलस्वरूप एक ओर संयुक्त परिवारों की जगह केन्द्रक परिवारों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी तो दूसरी ओर परिवार में स्त्रियों और बच्चों के अधिकारों और माँगों में वृद्धि लगी। भौतिकवादी मनोवृत्तियों के कारण लोग अधिक से अधिक धन उपार्जित करने का प्रयत्न इसलिए करने लगे जिससे वे अपने लिए तरह–तरह की सुख–सुविधाओं के साधन जुटा सकें। यहीं से उपभोग की सामान्य आवश्यकता ने धीरे–धीरे उपभोक्तावाद की समस्या का रूप लेना आरम्भ कर दिया।

उपभोक्तावाद का सम्बन्ध एक विशेष उपभोक्तावादी संस्कृति से है। यह संस्कृति बीसवीं शताब्दी के शुरू से उन विकसित देशों से आरम्भ हुई जहाँ औद्योगीकरण के कारण उत्पादकों द्वारा उपभोग की नयी–नयी वस्तुओं का निर्माण आरम्भ कर दिया गया। भारतीय समाज में उपभोक्तावाद की प्रक्रिया स्वतन्त्रता के बाद आरम्भ हुई। इस समय एक ओर नियोजित रूप से देश का औद्योगीकरण किया जाने लगा तो दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न विकास कार्यक्रमों के द्वारा लोगों की आय के साधन बढ़ाने के साथ ही उनकी परम्परागत मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने के प्रयत्न किये जाने लगे। यातायात और संचार के साधनों का विकास होने से जातियों में बंटे एक–दूसरे से पृथक् समूहों का आपस में सम्पर्क बढ़ने लगा। स्थान–परिवर्तन की प्रवृत्ति बढ़ने से नगरों की जनसंख्या में भी तेजी से वृद्धि होने लगी। इस प्रकार औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा रहन–सहन के तरीकों से

सम्बन्धित परिवर्तनों ने संयुक्त रूप से एक ऐसी संस्कृति विकसित करना आरम्भ कर दी जिसे हम उपभोक्तावादी संस्कृति कहते हैं।

प्रत्येक देश में सफल उत्पादक वे लोग होते हैं जो लोगों की बदलती हुई आवश्यकताओं और मनोवृत्तियों अनुसार उपभोग की नयी वस्तुओं का अनुमान लगाकर उनका उत्पादन करते हैं तथा प्रचार के साधनों के द्वारा उन्हें लोकप्रिय बना देते हैं। जैसे–जैसे नयी वस्तुएँ बाजार में आती हैं, एक–दूसरे को देखकर धीरे–धीरे जनसाधरण में उनके उपयोग का मोह बढ़ने लगता है। फलस्वरूप जो वस्तुएँ जीवन के लिए गैर–जरूरी होती हैं अथवा जिनकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं होती, वे वस्तुएँ महँगी होने के बाद भी आवश्यक वस्तुओं की तरह बिकने लगती है। उदाहरण के लिए टॉयलेट पेपर, टूथ पेस्ट, नैपकिन पेपर, पिज्जा, बर्गर, तरह–तरह के सौन्दर्य प्रसाधन, पेप्सी और कोला जैसे कोल्ड ड्रिंक्स, डिब्बाबन्द मुरब्बे और अचार आदि इसी तरह की वस्तुएँ हैं। इनके बिना भी व्यक्ति इन सुविधाओं को दूसरे रूप में प्राप्त कर सकता है लेकिन आज बहुत सामान्य आय वाले परिवारों में भी इन वस्तुओं का उपभोग तेजी से बढ़ता जा रहा है। सामान्य उपभोग की वस्तुओं, जैसे–आटा, चावल, दालों और मसालों को भी ट्रेडमार्क युक्त पैकेटों में महंगे दामों पर बेचा जा रहा है। लोग अधिक कीमत देने के बाद भी इनका उपभोग इसलिए करते हैं जिससे वे अपने आपको अधिक प्रतिष्ठित सिद्ध कर सकें। एक सामान्य परिवार में आज बच्चों के खिलौनों कॉपियों और तरह–तरह के बॉलपेनों, ड्राइंग की किताबों और रंगों, बेबी सोप और क्रिम पाउडर तथा बाजार में सिले गैर–जरूरी वस्त्रों पर जितना धन व्यय कर दिया जाता है, कुछ समय पहले तक उतने व्यय से पूरे परिवार का भरण–पोषण हो जाता था।

उपभोक्तावाद से सम्बन्धित एक प्रमुख समस्या यह है कि विज्ञापनों के मायाजाल के कारण लोगों की आय का एक बड़ा हिस्सा गैर–जरूरी वस्तुओं के उपभोग पर व्यय हो जाने के साथ ही सांस्कृतिक आयोजनों और त्यौहारों का रूप भी बिगड़ता जा रहा है। कुछ समय पहले तक सभी लोग होली, दीपावली, दशहरा, ईद और क्रिसमस जैसे त्यौहारों पर एक–दूसरे से मिलकर अथवा उन्हें उपहार देकर हर्ष और उल्लास के साथ इन त्यौहारों को मनाते थे । उपभोक्तावाद ने इन त्यौहारों को 'पेपर त्यौहार' का रूप दे दिया। इसका तात्पर्य है कि अब अधिकांश लोग टेलीफोन, "जेंचच मैसेज, फेसबुक मैसेज, ई–मेल या ग्रीटिंग्स कार्ड के द्वारा ही बन्द कमरे में बैठकर एक–दूसरे को शुभकामना देने और त्यौहार को मना लेने की रस्म को पूरा कर लेते हैं। विभिन्न कम्पनियों द्वारा विभिन्न त्यौहारों के अतिरिक्त नव वर्ष, जन्म दिन, मैरिज एनिवर्सरी, वेलेन्टाइन डे, शिक्षक दिवस, महिला दिवस, परीक्षा में सफलता और इसी तरह के विभिन्न अवसरों पर "जेंचच मैसेज, फेसबुक मैसेज करके अपने आप को गौरवान्ति महसूस करते हैं। साथ में ग्रीटिंग्स कार्ड छापकर उनका इतना अधिक प्रचार किया जाता है कि अपनत्व से भरा हुआ पत्राचार ग्रीटिंग्स कार्ड की संस्कृति में सिमटता जा रहा है। तरह–तरह के उत्पादों की बिक्री के लिए युवा लड़कियों का इस तरह उपयोग किया जाने लगा है कि विभिन्न वस्तुओं के व्यापार मेलों और दूसरे अवसरों पर यह लड़कियाँ स्वयं एक तरह का उत्पाद बनने लगी हैं। आर्थिक विकास के

नाम पर सरकार द्वारा भी इस तरह की आर्थिक नीतियाँ बनायी जाने लगी हैं कि लोग कम से कम बचत करक अपनी आय का उपयोग विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उपभोग पर करें। बैंकों द्वारा ब्याज की दर को कम करत उद्देश्य भी लोगों को उपभोग पर अधिक व्यय करने का प्रोत्साहन देना है।

भारतीय समाज में उपभोक्तावाद का सबसे हास्यास्पद पहलू यह है कि जब देशी और विदेशी उत्पादकों द्वारा करवा चौथ, नवरात्रि, कृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी और महाशिवरात्रि जैसे व्रतों के लिए भी विषेष पैकिट बनाये जाने लगे हैं तथा मध्यम वर्ग का एक बड़ा भाग इन पैकेटों में बन्द सामग्री को खाकर विषेष गर्व का अनुभव करने लगा है। धर्मपरायण आधुनिक स्त्रियाँ अपनी किट्टी पार्टी आदि के अवसर पर एक–दूसरे को यह बताती हैं कि ऐसे पैकेटों का उपभोग करके व्रत रखना कितना आसान हो गया है। उपभोक्ताओं पर बाजार इस तरह हावी होता जा रहा है कि कुछ समय पहले तक जिस तरह परिवार में त्यौहार को मनाने की तैयार की जाती थी, वे तैयारियाँ अब व्यापारियों द्वारा अपनी दुकानों को सजाकर की जाने लगी हैं। गर्मियो में समर सरप्राइज, ठण्ड के मौसम में बिंटर बोनान्जा और बरसात में मानसून गिफ्ट तैयार करके सामान्य उपभाक्ताओं की आय का बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बुरी तरह दोहन किया जाने लगा है। विभिन्न अवसरों और विभिन्न मौसमों सेल–डिस्काउण्ट, एक के साथ एक मुफ्त, 80 प्रतिषत की आदि छूट विशेष खरीद पर अतिरिक्त उपहार जैसी आकर्षक योजनाओं के कारण उपभोक्ता सही और गलत के अन्तर को समझने में असहाय होता जा रहा है।

बढ़ते हुए उपभोक्तावाद का एक विशेष पहलू वर्तमान जीवन में टेली–शॉपिंग के माध्यम उपभोग की प्रवृत्ति का बढ़ना है। बड़े–बड़े नगरों में अब हर तरह की आवश्यकता से सम्बन्धित मनपसन्द वस्तुओं टेलीफोन करके प्राप्त किया जा सकता है। ऑन लाईन शॉपिंग करके अपने आप को गौरवान्ति महसूस कर रहे हैं। घर पर किसी मेहमान के आने पर सामान्य गृहणिया भी एक फोन करके होटल या रेस्टोरेंट से लंच पैक मँगवाकर अपने आप को आधिक प्रतिष्ठित और आधुनिक महसूस करती हैं। जो नाश्ता या भोजन घर पर 40–50 रुपये में तैयार किया जा सकता है, उसके लिए तीन चार सौ रुपये के बिल का भुगतान करना उपभोक्तावादी संस्कृति की ही देन है।

उपभोक्ताओं की मानसिकता को अधिक अच्छी तरह समझने वाला व्यापारी वर्ग ऐसे सभी फार्मूले काम लाता है जिससे उपभोक्ता उसे वस्तुओं की कहीं अधिक कीमत देकर भी विशेष सन्तुष्टि का अनुभव कर सकें। स्पष्ट है कि कुछ समय पहले तक जिस उपभोक्ता को 'बाजार का राजा' कहा जाता था, वह आज उत्पादकों और बाजार व्यवस्था का दास' बनता जा रहा है।

उपभोक्तावाद के कारण ¼CAUSES OF CONSUMERISM½

भारत में बढ़ता हुआ उपभोक्तावाद अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा संचार सम्बन्धी दशाओं का परिणाम है। उनमें से कुछ प्रमुख दशाएँ इस प्रकार हैं :

(1) उपभोग की आदतों में परिवर्तन– आज समाज के सभी वर्गों में उपभोग की आदतें परम्परागत जीवन से बहुत भिन्न हो चुकी हैं। ग्रहणियाँ अब रसोईघर में कम से कम समय देना पसन्द करती हैं। उपभोग की प्रत्येक उस वस्तु को अधिक उपयोगी समझा जाता है जिसमें शारीरिक श्रम की कम से कम आवश्यकता हो। उपभोग का सम्बन्ध आवश्यकता से उतना नहीं है जितना कि प्रदर्शन से। वस्तुओं की गुणवत्ता को स्वास्थ्य की दृष्टि से देखने की जगह मूल्य के आधार पर आँका जाने लगा है। सामान्य धारणा यह है कि जो वस्तु जितनी महंगी होती है, वह उतनी ही अच्छी और उपयोगी भी होती है।

(2) **टी. वी. कार्यक्रमों का प्रभाव**– भारत में सन् 1990 के बाद निम्न और मध्यम आय वर्ग के परिवारों में टेलीविजन को एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में देखा जाने लगा है। विभिन्न चौनलों पर टी. वी. द्वारा जिन कार्यक्रमों को दिखाया जाता है, वे इतने काल्पनिक और आधुनिक प्रकृति के होते हैं कि अधिकांश लोग इन कार्यक्रमों से सम्बन्धित पात्रों द्वारा उपयोग में लायी जाने वाली वस्तुओं को अपने लिए आदर्श मानने लगते हैं।

(3) **संयुक्त परिवारों का विघटन**– भारतीय समाज में जैसे–जैसे संयुक्त परिवारों की जगह केन्द्रक एकाकी परिवारों की संख्या में वृद्धि हुई, परिवार में स्त्रियों और बच्चों के अधिकारों में वृद्धि होने लगी। स्त्रियाँ और बच्चे घर से बाहर दूसरों को जिन वस्तुओं का उपभोग करते हए देखते हैं, उन्हें पाने के लिए उनकी इच्छाएँ बढ़ने लगती हैं। अपने साधनों के बाहर जाकर भी स्त्रियाँ उन वस्तुओं को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगती है। उपभोग की वस्तुओं का सम्बन्ध फैशन के तरीकों से होने के कारण इनकी प्रकृति जैसे–जैसे बदलती रहती है, उपभोक्तावाद की समस्या उतनी ही गम्भीर होती जाती है।

(4) **उत्पादकों के स्वार्थ**– वर्तमान युग में सफल उत्पादक वे लोग होते हैं जिन्हें उपभोक्ताओं की मानसिकता, इच्छाओं और आवश्यकता को अच्छी जानकारी होती है। इसी के अनुसार वे लगातार ऐसा पस्तुओं का उत्पादन करते रहते हैं जो उपभोक्ताओं को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। समान प्रकृति के उत्पादों में थोड़े–थोडे अन्तराल के बाद नये विशेषण इस तरह जोड़ दिये जाते हैं जिससे उन्हें पहले से अधिक उपयोगी प्रमाणित किया जा सके। इसके फलस्वरूप उपभोक्ता वस्तु की अधिक कीमत देकर भी उसकी ओर आकर्षित होने लगते हैं।

(5) **आकर्षक विज्ञापन** – आज का युग विज्ञापन का युग है। विज्ञापन प्रचार का ऐसा साधन है जो पहले से ही साधारण बुद्धि के लोगों के सोचने की क्षमता को समाप्त कर देता है। जब बड़े–बड़े अभिनेता, कलाकार, खिलाडी अथवा लोकप्रिय व्यक्ति एक विषेष वस्तु के उपयोग को अपनी सफलता का राज बताते हैं तो सामान्य लोग उस वस्तु के प्रति सरलता से आकर्षित होने लगते हैं। कोई वस्तु चाहे कितनी भी अनुपयोगी क्यों न हो, विज्ञापन की शैली उसे उपयोगी सिद्ध कर देती है। विज्ञापन इस सिद्धान्त पर आधारित होते हैं कि "किसी झूठ को यदि 100 बार बोला जाय तो वह सत्य हो जाता है।" आज वस्तुओं की लागत से अधिक रूपया विज्ञापनों पर खर्च करके बड़ी–बड़ी कम्पनियों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण करना जीवन सामान्य ढंग बन चुका है।

(6) **ऋण की सुविधाएँ**–वर्तमान युग में सभी बड़े बड़े बैंक और वित्तीय संगठन उपभोग की विभिन्न वस्तुओं, जैसे–टी. वी. रेफ्रिजरेटर, एयर कण्डीशनर, स्कूटर, कार, सी. डी. प्लेयर, कम्प्यूटर, मोबाइल, लेपटॉप, टेबलेट, फर्नीचर तथा घरेलू साज–सज्जा के उपकरणों आदि के लिए कम ब्याज पर ऋण की सुविधाएं प्रदान करने लगे हैं।

(7) **नगरीय संस्कृति का आकर्षण**– नगरीय संस्कृति व्यवहार के कुछ विशेष तरीकों पर आप दूसरों के सामने अपने आपको अधिक आधुनिक और सम्पन्न दिखाना, बच्चों की सही और गलत सभी मांगों को पूरा करना, समय–समय पर वेशभूषा में परिवर्तन करते रहना, सामाजिक आयोजनों के अवसर पर अपनी आर्थिक स्थिति को ऊँचा करके दिखाना तथा भौतिक क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों को सिद्ध करना इस संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। स्वाभाविक है कि नगरीय संस्कृति ने केवल नगरों में ही नहीं बल्कि गाँवों में भी उपभोक्तावाद को प्रोत्साहन दिया है ।

(8) **भौतिक संस्कृति का अहम समझना** – वर्तमान युग में व्यक्ति पूर्णतः भौतिकवादी हो गया है। व्यक्तियों की अभौतिवाद की ओर मोहभंग हो गया है, इसलिए समाज में सांस्कृतिक विलब्ना जैसी स्थिति पैदा हो गई। आज व्यक्यि कार्य इसलिए करता है कि उसकी भौतिक वस्तुओं की पूर्ति हो जाये। इस कारण से भी उपभौक्तावादी संस्कृति विकसित हुई है।

निष्कर्ष

उपभोक्तावादी संस्कृति ने हमारे समाज व उसके विचार, विश्वास को न केवल हाइजैक कर लिया बल्कि एक ऐसी संस्कृति पनप रही है जिसने हमारे तमाम मानवीय, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को नष्ट कर दिया। हम उत्पादों का उपभोग नहीं कर रहे हैं बल्कि उत्पाद हमारे जीवन का उपभोग कर रहे हैं। वास्तव में उपभोग जीवन की बुनियादी जरूरत है। उपभोग के अभाव में हम तनाव का अनुभव करते हैं। वास्तव में मनुष्य की किसी जरूरत की वस्तुएं जो उपयोगी नहीं हैं लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से जरूरी बना दी गई है, वे सब उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है। वर्तमान उपभोक्ता समाज का उद्भव अमेरिका में हुआ। आज संस्कृति का स्वरूप स्थानीय न होकर भूमंडलीय हो गया है। संस्कृति एक मानसिक अवधारणा है जिससे समाज में भूमंडलीकरण के कारण बाजारवाद पनपा और बाजारवाद से उपभोगवाद। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने उत्पाद को खपाने के लिए ऐसी परिस्थितियां निर्मित की जिससे उपभोक्ता वर्ग न चाहते हुए भी उपभोक्तावादी संस्कृति की तरफ आकर्षित होते चले गये। उपभोक्तावाद परिवार की सामन्ती संरचना पर मर्मांतक प्रहार कर रहा है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भूमण्डलीकरण की संस्कृति भारत की राष्ट्रीय संस्कृति पर कुठाराघात कर रही है। साहित्यकार बाजारवाद की माया मोहिनी से बचते हुए लेखन का दायित्व निभाते हुए जनता को तैयार करने की चुनौती से लैस होकर सृजनशीलता का धर्म निभा रहे हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण नई पीढ़ी में रिश्ता, सम्बन्ध और मूल्य का धनाधारित होना, अणु परिवार को बढ़ावा मिलना, धर्मान्धता के दावानल का सुलगना,

पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव, पति–पत्नी के सम्बन्धों के मायने बदलना, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का ध्वस्त होना, भाइचारे की भावना का लुप्त होना आदि दुष्वृत्तियों को समकालीन समाज वैज्ञानिकों ने इसका विश्लेषण किया है तथा सांस्कृतिक मूल्यों के संकट के प्रतिरोध में मानवीय सम्बन्धों को प्रश्रय देकर सामाजिक एकता की मांग की है जोकि आज की सामाजिक आवष्यकता है।

समाज में बढ़ते हुए उपभोक्तावाद के कारण अनेक नयी समस्याएं सामने आने के बाद भी सामाजिक–आर्थिक विकास में इसका विशेष योगदान माना जाता है। इसका तात्पर्य है कि उपभोक्तावाद के परिणाम अनेक लाभों और हानियों के रूप में देखे जा सकते हैं।

जहाँ तक उपभोक्तावाद के लाभों का प्रश्न है, वस्तुओं का अधिक से अधिक उपभोग करने की प्रवृत्ति से नयी–नयी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है जिसके फलस्वरूप देश का आर्थिक विकास होने लगता है। उत्पादन में होने वाली वृद्धि से रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि होती है। कुछ समय पहले तक लोगों की जो बचत अनार्थिक रूप से घर में या जेवरों के रूप में रखी रहती थी, उस आय का बड़ा हिस्सा बाजार में पहुँच जाने से अर्थव्यवस्था मजबूत बनने लगती है। उपभोक्ताओं को बाजार में अपने उपयोग की विभिन्न वस्तुओं का विकल्प मिलने के कारण वह अपनी आवश्यकताओं को अधिक अच्छे ढंग से पूरा करने लगता है। उपभोक्तावाद बढ़ने से जब विदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहन मिलता है तो इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होने लगती है। आज वैश्वीकरण (हसवइंसप्रंजपवद) को प्रोत्साहन देने में उपभोक्तावाद का भी विशेष योगदान है। उपभोक्तावाद का एक अन्य लाभ यह है कि इससे जनसाधारण का दैनिक जीवन अधिक सुविधाजनक हो गया है। नयी–नयी वस्तुओं के उपयोग के कारण गृहणियों को अब रसोईघर में अधिक समय नहीं देना पड़ता। स्त्रियों को घरेलू कामों से अतिरिक्त समय मिल जाने से उनके सामाजिक सम्पर्क का दायरा बढ़ा है। इस दशा ने स्त्रियों की प्रस्थिति में सुधार करने में भी विशेष भूमिका निभायी है। वास्तविकता यह है कि जीवन–स्तर में सुधार लाने में भी उपभोक्तावाद का विशेष योगदान है। जैसे–जैसे उपभोक्तावाद में वृद्धि होती है, व्यक्ति को अपनी आय बढ़ाने के लिए अधिक मेहनत करने की प्रेरणा मिलती है। इससे व्यक्तियों की कार्यकुशलता में भी वृद्धि होती है। इसका तात्पर्य है कि किसी समाज को परम्परावाद से आधुनिकता की ओर ले जाने में उपभोक्तावाद का एक प्रत्यक्ष योगदान है।

अनेक लाभों के बाद भी उपभोक्तावाद के फलस्वरूप हमारे समाज में अनेक नयी समस्याएँ उत्पन्न हैं। इनमें सबसे बड़ी समस्या उत्पादकों द्वारा उपभोक्ताओं का तरह–तरह से शोषण करना है। विज्ञापन की सहायता से अधिकांश उत्पादक घटिया और सस्ती किस्म की वस्तुओं को अधिक मूल्य पर बेचकर जनता की गाढ़ी कमाई का बुरी तरह दोहन करने लगते हैं। आर्थिक प्रतिस्पर्धा में सफल होने के लिए नकली वस्तुओं का निर्माण करने अथवा चीजों में मिलावट करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ने लगती है। बहुत–से खाद्य पदार्थों, सौन्दर्य प्रसाधनों और दैनिक उपयोग की वस्तुओं की गुणवत्ता इतनी कम होती है कि वे स्वास्थ्य के लिए खतरा बन जाते हैं। आज

उपभोक्तावाद के कारण निम्न और मध्यम वर्ग के लोगों का जीवन आर्थिक बोझ से इतना दब गया है कि उनमें मानसिक तनावों की समस्या तेजी से बढ़ती जा रही है। जब कोई व्यक्ति पत्नि या बच्चों की अनावश्यक मांगों को पूरा नहीं कर पाता तो पारिवारिक जीवन भी संघर्षपूर्ण बनने लगता। उपभोग की वस्तुओं के बारे में नयी और पुरानी पीढी के विचार एक–दूसरे से भिन्न होने के कारण अन्तर–पीढी तनावों भी वद्धि हो रही है। उपभोक्तावाद से ऐसी वस्तुओं के उत्पादन को भी प्रोत्साहन मिला है जो गन्दगी और प्रदूषण में तेजी से वृद्धि कर रही है। प्लास्टिक कर वस्तुओं का बढ़ता उपयोग इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण है। सच तो यह है कि आज सामान्य व्यक्ति का जीवन पूरी तरह बाजार और उत्पादकों के अधीन हो गया है। यही कारण है कि अब विभिन्न देषों की सरकारें भी हितों की रक्षा को अपने एक प्रमुख दायित्व के रूप में देखने लगी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप जो समाज में उपभोक्तावाद की संस्कृति विकसित हो रही है उससे समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Henri Baudet, Henk van der Meulen : Consumer Behavior and Economics Growth in the Modern Economic, Londan, 1982.
2. Angus Deaton and Johan Muellbauer : Economics and Consumer Behavior, Cambridge University Press, U.K. 1980.
3. Colin C. Williams : Consumer Services and Development, London and New York, 2002.
4. Ram Ahuja : Social Problems in India, Rawat Publication , Jaipur, 2014.
5. Claudia Lima Marques Dan Wei : Consumer law and Socioeconomic Development.
6. Agrwal G.K. : Indian Society : Issues and Problems, SBPD Publications, Agra, 2011-2012.
7. Nancey G. Leigh, Edward J. Blakely : Planning Local Economic Development Theory and Practice, 2016
8. Gonzalez, Joaquin Jay III, Roger L. Kemp : Small Town Economic Development: Reports on Growth Strategies in Practice
9. Pramod Ranjan }kjk fgUnh if=dk % miHkksDrkokn vkSj ifjokj
10. Mamta kaliya & Lalit Srimali : Bazaar or Upbhoktawad ke Prabhav ka aakhyan
11. John P. Blair , Michael Charles Carroll : Local Economic Development: Analysis, Practices, and Globalization
12. Mihailo Temali : The Community Economic Development Handbook : Strategies and Tools to Revitalize Your Neighborhood Kindle Edition

13. David R. Godschalk, Emil E. Malizia : Sustainable Development Projects: Integrated Design, Development, and Regulation 1st Edition, Kindle Edition